।। ॐ श्रीपरमात्मने नमः ।।

सुखपूर्वक जीने की कला

राजेन्द्र कुमार धवन

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

सुखपूर्वक जीनेकी कला

[परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके विचारोंपर आधारित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

राजेन्द्र कुमार धवन

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

सुखपूर्वक जीनेकी कला

वर्तमानमें लोग भिन्न-भिन्न कारणोंसे बहुत दुःखी हैं। इसलिये जब उन्हें समाचार मिलता है कि शहरमें कोई ऐसा साधु, ज्योतिषी अथवा तान्त्रिक आया है, जो दूसरोंका दुःख दूर कर सकता है तो वे वहीं चल पड़ते हैं। परन्तु आजकल सच्चे साधु-सन्त, ज्योतिषी या तान्त्रिक प्रायः मिलते नहीं। जो मिलते हैं, वे केवल पैसा कमानेवाले, अपना स्वार्थ सिद्ध करनेवाले ही होते हैं। किसी-किसीकी प्रारब्धवश झूठी प्रसिद्धि भी हो जाती है। जैसे, किसी बनावटी साधुके पास सौ आदमी अपनी-अपनी कामना लेकर जायँ तो उनमेंसे पचीस-तीस आदमियोंकी कामना तो उनके प्रारब्धके कारण यों ही पूर्ण हो जायगी! परन्तु वे प्रचार कर देंगे कि अमुक साधुकी कृपासे, आशीर्वादसे ही हमारी कामना पूर्ण हुई। इस प्रकार बनावटी साधुका भी प्रचार हो जाता है।

मान लें, एक शहरमें कोई सच्चे सन्त आये। वे किसीसे कुछ नहीं माँगते थे। भिक्षासे जीवन-निर्वाह करते थे। किसीसे भी किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं जोड़ते थे। किसीको चेला-चेली भी नहीं बनाते थे। जो उनके पास आता था, उसका दुःख दूर करनेकी चेष्टा करते थे। शहरमें उनकी चर्चा फैली तो लोगोंकी भीड़ उमड़ने लगी। अनेक लोग उन सन्तके पास इकट्ठे हो गये। कुछ लोग अपना-अपना दुःख सुनाने लगे। वे सन्त प्रत्येक व्यक्तिकी बात सुनकर उसका समाधान करने लगे।

श्रोता—महाराजजी! मैं बहुत दुःखी हूँ! मेरा कष्ट कैसे दूर हो?

सन्त—देखो भाई! संसारमें सुख भी है, दुःख भी। आजतक एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ, जो सदा सुखी रहा हो अथवा सदा दुःखी रहा हो। जैसे दिनके बाद रात और रातके बाद दिन आता ही है, वैसे ही सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख आता ही है। न तो सुख सदा रहता है, न दुःख। इसलिये घबराओ मत। केवल इस सत्यको स्वीकार कर लो कि यह समय सदा ऐसा नहीं रहेगा। रात बीतेगी, दिन आयेगा।

श्रोता—परन्तु वर्तमानमें जो दुःख है, वह मुझसे सहन नहीं हो रहा है। कोई उपाय बतायें।

सन्त—उसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करो। व्याकुल होकर भगवान्‌को पुकारो। उन्हें पुकानेके सिवाय और कोई उपाय नहीं है।

श्रोता—मैं भगवान्‌से प्रार्थना करता हूँ, पर वे सुनते ही नहीं!

सन्त—ऐसी बात नहीं है।

सच्चे हृदय से प्रार्थना जब भक्त सच्चा गाय है।

तो भक्तवत्सल कान में वह पहुँच झट ही जाय है॥

भगवान् तो सबके हृदयमें बैठे हैं। वे आपकी प्रत्येक प्रार्थना सुनते हैं। यद्यपि भीतरमें राग-द्वेष, काम-क्रोध, मोह आदि वृत्तियाँ रहनेके कारण सच्ची प्रार्थना होती नहीं, फिर भी बार-बार प्रार्थना करते रहो। जैसे मोटरको स्टार्ट करते समय बार-बार चाबी घुमाते-घुमाते कभी एक ही चाबीसे मोटर स्टार्ट हो जाती है, ऐसे ही प्रार्थना करते-करते कभी हृदयसे सच्ची प्रार्थना निकलेगी तो एक ही पुकारसे काम हो जायगा।

वास्तवमें भगवान् वही कार्य करते हैं, जिससे परिणाममें मनुष्यका हित हो। भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंके मित्र थे। द्रौपदीके पुकारते ही वे प्रकट हो जाते थे। फिर भी पाण्डवोंको कितना कष्ट भोगना पड़ा! तुम्हारा काम है कि उन्हें पुकारो। भगवान्‌की स्मृति समस्त विपत्तियोंसे मुक्त करनेवाली है—'**हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्**' (श्रीमद्भा० ८। १०। ५५)।

अन्य श्रोता—भगवान् दुःख देते ही क्यों हैं?

सन्त—भगवान्‌के पास दुःख है ही नहीं, फिर वे दुःख देंगे कैसे? दुःख तो तुम्हारा अपना पैदा किया हुआ है।

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

(मानस, अयोध्या० २१९। २)

भगवान् तो तुम्हारे किये कर्मोंका फल भुगताकर तुम्हें शुद्ध कर रहे हैं, मुक्त कर रहे हैं। भगवान् आनन्ददाता हैं, दुःखदाता नहीं। वे तो तुम्हें दुःखोंसे छुड़ाना चाहते हैं। परन्तु तुम उनसे विमुख होकर संसारमें लगे हो, जो दुःखालय है, दुःखोंका घर है। अब भैया, तुम ही सोचो, तुम्हारा दुःख दूर कैसे होगा?

दुःख भगवान् द्वारा बनायी सृष्टिमें नहीं है, अपितु जीव द्वारा बनायी सृष्टि (मैं-मेरापन)-में है। यदि जीव मैं-मेरापन मिटा दे तो दुःखोंकी जड़ ही कट जायगी। परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज कहते थे कि *'त्याग करनेसे सुख मिलता है—यह अटकल लोगोंको आती नहीं, तभी वे दुःख पाते हैं। दुःखसे बचनेका उपाय सुख नहीं है, अपितु त्याग है'*।

अन्य श्रोता—महाराज! मेरे व्यापारमें निरन्तर घाटा लग रहा है! आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गयी है! क्या करूँ?

सन्त—रुपयोंके अभावको हम रुपयोंसे मिटा लेंगे—इसके समान कोई मूर्खता नहीं है! तुम प्रयत्न मत छोड़ो। पर भैया! मिलेगा वही, जो तुम्हारे भाग्यमें लिखा है। जो तुम्हें मिलनेवाला है, वह तुम्हें अवश्य मिलेगा। उसे कोई दूसरा छीन सकता ही नहीं! एक लोटेको चाहे तालाबमें डुबाओ, चाहे समुद्रमें, जल लोटाभर ही निकलेगा।

जब दाँत न थे तब दूध दियो, अब दाँत भये कहा अन्न न दैहैं।
जीव बसे जल में थल में, तिन की सुधि लेइ सौ तेरिहु लैहैं॥
जान को देत अजान को देत, जहान को देत सौ तोहूँ कूँ दैहैं।
काहे को सोच करैं मन मूरख, सोच करै कछु हाथ न ऐहैं॥

श्रोता—लड़कियाँ बड़ी हो रही हैं। भविष्यमें उनका विवाह भी करना है! कैसे होगा?

सन्त—इसके लिये चेष्टा करो, पर चिन्ता मत करो—'**होइहि सोइ जो राम रचि राखा**' (मानस, बाल० ५२। ४)। लड़कियाँ केवल तुम्हारे प्रारब्धपर ही निर्भर नहीं हैं। उनका अपना भी प्रारब्ध है। इसलिये समय आनेपर उनके प्रारब्धके अनुसार जो मिलना है, वह अवश्य मिलेगा और उनका विवाह हो जायगा।

श्रोता—बेटा मेरे प्रतिकूल चलता है। मेरी बात बिल्कुल नहीं मानता! क्या करूँ?

सन्त—ऐसा समझो कि वह तुम्हारे पूर्वजन्मका बाप है! उसकी बात यदि अनुचित न हो तो मान लो। तुम्हें जो बात उचित दीखे, वह उससे कह दो। अब वह माने या न माने, उसकी मरजी। यह आग्रह छोड़ दो कि वह मेरी बात माने।

जो पै मूढ़ उपदेस के होते जोग जहान।
क्यों न सुजोधन बोध कै आए स्याम सुजान॥
फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम॥

(दोहावली ४८३-४८४)

'यदि संसारमें मूर्ख मनुष्य उपदेशके योग्य होते तो परम चतुर भगवान् श्रीकृष्ण दुर्योधनको क्यों न समझा सके? यद्यपि बादल अमृत-सा जल बरसाते हैं तो भी बेंत फूलता-फलता नहीं। इसी प्रकार यदि ब्रह्माके समान भी ज्ञानी गुरु मिल जाय तो भी मूर्खके हृदयमें ज्ञान नहीं होता।'

भैया! जब वह तुम्हारी बात मानता ही नहीं, तो फिर उसे अपना बेटा मानते ही क्यों हो? उसे अपना न मानकर भगवान्‌का मान लो, भगवान्‌के अर्पण कर दो।

अन्य श्रोता—मैंने अपने रिश्तेदारोंकी समयपर बहुत सहायता की। पर अब वे मेरे विरुद्ध चलते हैं! वे दूसरोंके आगे मेरी निन्दा करते हैं और मेरे बारेमें झूठी-झूठी बातें फैलाते हैं!

सन्त—तुम उनकी तरफ न देखकर अपनेको देखो कि कहीं तुमसे कोई गलती तो नहीं हुई है? यदि अपनी कोई गलती दीखे तो उसे दूर कर दो, और यदि अपनी कोई गलती न दीखे तो फिर दुःखी होनेकी कोई जरूरत नहीं, प्रसन्न रहो। यह आशा मत रखो कि दूसरे तुम्हारे अनुकूल चलें। दूसरे सब हमारे अनुकूल चलें—यह सम्भव ही नहीं है। बड़े-बड़े सन्त हुए, भगवान्‌के अवतार हुए, पर उनके भी सब अनुकूल नहीं हुए!

श्रोता—महाराजजी! मैंने सदा दूसरोंपर विश्वास किया, पर मेरे साथ सदा धोखा ही हुआ!

सन्त—विश्वास करनेयोग्य तो केवल भगवान् ही हैं। संसार विश्वास करनेयोग्य है ही नहीं। संसारपर विश्वास करोगे तो धोखा ही मिलेगा!

संसार साथी सब स्वार्थके हैं,
पक्के विरोधी परमार्थ के हैं,
देगा न कोई दुःख में सहारा,
सुन तू किसी की मत बात प्यारा।

× × ×

किससे करिये प्यार यार खुद गरज जमाना है॥
सच्चा मित्र और जन्म का साथी ईश्वर सर्वाधार,
राधेश्याम शरण चल उसकी, तब हो बेड़ा पार,
दुखी का वही ठिकाना है॥

× × ×

आराम के हैं सब संग साथी, जब वक्त पड़ा तो कोई नहीं,
यहाँ मतलब के हैं लोग सभी, दुनिया में किसी का कोई नहीं।

संसार सेवाके योग्य है, विश्वासके योग्य नहीं। उसकी सेवा कर दो, पर विश्वास मत करो।

अन्य श्रोता—महाराजजी! मेरी कोई सन्तान नहीं है। मनमें चिन्ता रहती है कि बुढ़ापेमें हमारी सेवा कौन करेगा! क्या कोई बालक गोद ले लें?

सन्त—संसारमें देखो, जिनकी सन्तान है, वे सब सुखी हैं क्या? कई लोग तो अपनी सन्तानसे इतने दुःखी हैं कि सोचते हैं, सन्तान न होती तो अच्छा होता! क्या इस बातका तुम्हें पता है कि सन्तान होनेसे तुम सुखी हो ही जाते अथवा बुढ़ापेमें तुम्हारी सेवा होती ही? यदि बुढ़ापेमें सबकी सन्तान सेवा करती तो फिर आज वृद्धाश्रम क्यों बनाये जा रहे हैं? जब अपनी सन्तान भी सेवा नहीं करती तो फिर गोद लिया बालक तुम्हारी सेवा करेगा, इसकी क्या गारण्टी है?

यदि तुम्हारे प्रारब्धमें होगा तो बुढ़ापेमें तुम्हारी उन लोगोंसे भी अच्छी सेवा होगी, जिनकी सन्तान है! भगवान् किसी ऐसे व्यक्तिको भेज देंगे, जो बेटेसे भी बढ़कर तुम्हारी सेवा करेगा। अतः भविष्यकी चिन्ता मत करो।

अन्य श्रोता—मैं लम्बे समयसे बीमार हूँ। ऐसा लगता है कि किसीने मेरे ऊपर तान्त्रिक प्रयोग कर दिया है। कोई उपाय बतायें।

सन्त—यदि कोई तान्त्रिक प्रयोग करता है तो उसका असर हमपर तभी पड़ता है, जब हमारे प्रारब्धमें वैसा हो। दूसरा तो केवल उसमें निमित्त बनता है। यदि हमारे प्रारब्धमें न हो तो हमें कष्ट पहुँचानेकी किसीमें ताकत है ही नहीं! यदि तुम बीमार रहते हो तो यह तुम्हारा प्रारब्ध है, पुराने कर्मोंका फल है और दूसरे (तान्त्रिक प्रयोग करनेवाले)-का यह नया कर्म है, नया पाप है, जिसका फल उसे भविष्यमें भुगतना पड़ेगा। यह याद रखो कि दूसरा कोई भी व्यक्ति तुम्हें सुख या दुःख नहीं पहुँचा सकता—

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः
स्वकर्मसूत्रे ग्रथितो हि लोकः॥

(अध्यात्मरामायण २। ६। ६)

'सुख या दुःखको देनेवाला कोई और नहीं है। कोई दूसरा सुख-दुःख देता है—यह समझना कुबुद्धि है। मैं करता हूँ—यह वृथा अभिमान है; क्योंकि लोग अपने-अपने कर्मोंकी डोरीसे बँधे हुए हैं।'

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

(मानस, अयोध्या० ९२। २)

श्रोता—महाराजजी! मैं बहुत दुःखी हूँ! मुझसे दुःख सहा नहीं जाता और मेरे मनमें आत्महत्या करनेकी आती है!

सन्त—आत्महत्या करनेसे तुम अपने कर्मोंके भोगसे बच नहीं सकते। पूर्वकृत कर्मोंका फल तो भोगना ही पड़ेगा, आत्महत्या-रूपसे एक नया पाप और हो जायगा! कारण कि आत्महत्या करनेसे एक मनुष्यकी हत्या करनेका पाप लगता है।

याद रखो कि आत्महत्या करनेसे तुम्हारा शरीर मरेगा, तुम नहीं मरोगे; क्योंकि जीवात्मा अमर है। अतः आत्महत्या करनेसे शरीर तो मर जायगा, पर तुम दुःखोंसे छूटनेकी अपेक्षा और अधिक दुःखी हो जाओगे और प्रेतयोनिमें भटकते रहोगे, नरकोंमें तड़पते रहोगे।

अभी जो दुःख है, वह आगे मिट भी सकता है और तुम भविष्यमें सुखी भी हो सकते हो। अँधेरी रात बीतनेपर सूर्यका उदय भी हो सकता है। अतः अभी निराश न होकर नयी सुबहकी प्रतीक्षा करो।

अन्य श्रोता—महाराज! मैं पारिवारिक समस्याओंसे बहुत दुःखी हूँ। कोई उपाय बतायें।

सन्त—दुःखका मूल कारण है—ममता। जिन वस्तुओं और व्यक्तियोंमें हमारी ममता है, उन्हींके बनने-बिगड़नेका असर हमपर पड़ता है। संसारमें असंख्य वस्तुएँ और व्यक्ति हैं, पर उनके बनने-बिगड़ने, जीने-मरने आदिका असर हमपर नहीं पड़ता। इसलिये किसी भी वस्तु-व्यक्तिमें ममता मत करो, फिर दुःख नहीं आयेगा।

विचार करो, जितनी भी वस्तुएँ और व्यक्ति हैं, वे सब-के-सब 'नदी-नाव-संयोग' की तरह मिलने-बिछुड़नेवाले हैं। पहले वे हमारे साथ नहीं थे, पीछे वे हमें मिल गये, और भविष्यमें वे सदा हमारे साथ नहीं रहेंगे। एक दिन वे हमसे बिछुड़ जायँगे अथवा हम उनसे बिछुड़ जायँगे!

प्रायः मनुष्य अपने खराब स्वभावके कारण दुःख पाता है। अतः अपना स्वभाव सुन्दर बनाओ।

अन्य श्रोता—मैं बूढ़ा हो गया हूँ। काम करनेमें असमर्थ हूँ। मेरे बेटे मेरी सेवा नहीं करते। वे मेरी बात नहीं मानते, उल्टे मेरा तिरस्कार करते हैं। मुझे क्या करना चाहिये?

सन्त—यूनानके प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात एक बार भ्रमण करते हुए किसी शहरमें पहुँचे। वहाँ उन्हें एक वृद्ध व्यक्ति मिला। सुकरातने उससे व्यक्तिगत जीवनके विषयमें पूछा। वह वृद्ध व्यक्ति बोला—

'मैं अपना पारिवारिक उत्तरदायित्व अपने पुत्रोंको देकर निश्चिन्त हूँ। वे जो कहते हैं, कर देता हूँ; जो खिलाते हैं, खा लेता हूँ और अपने पौत्र-पौत्रियोंके साथ हँसता-खेलता रहता हूँ। बच्चे कुछ भूल करते हैं तो भी चुप रहता हूँ। मैं उनके किसी कार्यमें बाधक नहीं बनता। पर जब कभी वे परामर्श लेने आते हैं, तब मैं अपने जीवनके सारे अनुभवोंको उनके सामने रखकर, जीवनमें की हुई भूलसे उत्पन्न दुष्परिणामोंकी ओरसे उन्हें सचेत कर देता हूँ। वे मेरी सलाहपर कितना चलते हैं, यह देखना और अपना मस्तिष्क खराब करना मेरा काम नहीं है। वे मेरे निर्देशोंपर ही चलें,

यह आग्रह मैं नहीं रखता। परामर्श देनेके बाद भी यदि वे भूल करते हैं तो मैं चिन्तित नहीं होता। उसपर भी यदि वे पुनः मेरे पास आते हैं तो मेरा द्वार सदैव उनके लिये खुला रहता है। मैं पुनः उचित सलाह देकर उन्हें विदा करता हूँ।'

वृद्धकी बात सुनकर सुकरात बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि इस आयुमें जीवन कैसे जिया जाय, यह आपने भलीभाँति समझ लिया है।

अन्य श्रोता—घरमें बहुत कष्ट आते हैं! एक ज्योतिषीने बताया कि मेरी ग्रहदशा खराब चल रही है। किसीने बताया कि मेरे मकानमें वास्तुदोष है। एक पण्डितजीने पितृदोष बताया है। मैंने सब उपाय कर लिये, अपना मकान भी वास्तुके अनुसार ठीक करा लिया, पर स्थितिमें सुधार नहीं हुआ! अब कृपा करके आप ही बतायें कि मैं क्या उपाय करूँ?

सन्त—भैया! मकान ठीक करानेसे वास्तुदोष तो दूर हो गया, पर प्रारब्धदोष दूर नहीं हुआ! मूलमें सब प्रारब्धका ही भोग है। एक श्लोक आता है—

वैद्या वदन्ति कफपित्तमरुद्विकारान्
ज्योतिर्विदो ग्रहगतिं परिवर्तयन्ति।
भूताभिषङ्ग इति भूतविदो वदन्ति
प्रारब्धकर्म बलवन्मुनयो वदन्ति॥

'रोगोंके उत्पन्न होनेमें वैद्यलोग कफ, पित्त और वातको कारण मानते हैं, ज्योतिषीलोग ग्रहोंकी गतिको कारण मानते हैं, प्रेतविद्यावाले भूत-प्रेतोंके प्रविष्ट होनेको कारण मानते हैं; परन्तु मुनिलोग प्रारब्धकर्मको ही बलवान् (कारण) मानते हैं।'

प्रारब्ध खराब हो तो ग्रह भी खराब हो जाते हैं, मकान भी खराब मिलता है, मित्र भी शत्रु हो जाते हें, लाभकी जगह भी नुकसान हो जाता है। इसलिये अपनी ओरसे दुःख-निवारणका उपाय करना तो ठीक है, पर उपाय करनेपर भी परिस्थिति न बदले तो उसे भगवान्‌की मरजी अथवा होनहार समझकर सन्तोष करना ही अच्छा है।

सन्तोंका दिया यह महामन्त्र भी भलीभाँति ग्रहण कर लो—**'करने' में सावधान और 'होने' में प्रसन्न**।

अन्य श्रोता—मेरा जवान बेटा मर गया है! उसके शोकमें मैं रात-दिन डूबा रहता हूँ। मेरा जीवन अन्धकारमय हो गया है!

सन्त—पुत्र पहले नहीं था, पीछे आया। अब वह चला गया तो तुम वही-के-वही (पहले-जैसे) रह गये। पुत्रके जानेका जो दुःख होता है, वह मोहसे होता है। सन्त रज्जबजी एक गाँवसे दूसरे गाँव जा रहे थे। रास्तेमें उन्हें एक रस्सा नीचे पड़ा हुआ मिल गया। उसे उठाकर उन्होंने अपने कन्धेपर रख लिया। जब गाँव पहुँचे तो देखा कि रस्सा कन्धेपर नहीं था, रास्तेमें ही कहीं गिर गया। वे बोले—

पहले जैसा मन कर ले भाया,
रज्जब रस्सा मूँज का, पाया न पाया।

संसारका कोई भी सम्बन्ध सदा रहनेवाला नहीं है। सभी सम्बन्ध मिलने और बिछुड़नेवाले हैं।

जिसका संयोग हुआ है, उसका वियोग अवश्यम्भावी है। अत: जो भी सम्बन्ध हैं, उनके प्रति अपने कर्तव्यका पालन कर दे, उनकी सेवा कर दे, पर बदलेमें कोई आशा न रखे।

कोई आज गया कोई काल गया,
कोई जावनहार तैयार खड़ा।
नहीं कायम कोई मुकाम यहाँ,
चिरकाल से यही रिवाज रही॥

× × ×

रज्जब रोवे कौन को, हँसे सु कौन विचार।
गये सु आवन के नहीं, रहे सु जावनहार॥

पिछले जन्मोंमें तुम्हारे कई पुत्र हुए होंगे, अब उनकी स्मृति (याद) भी है क्या? जैसे उनकी अब स्मृति नहीं है, वैसे ही इस जन्मके पुत्रकी भी स्मृति नहीं रहेगी! संसारमें प्रतिदिन असंख्य मनुष्य मरते हैं। जो मरते हैं, वे किसी-न-किसीके बेटे ही होते हैं। फिर उनका शोक तुम्हें क्यों नहीं होता? इसलिये नहीं होता कि उनमें तुम्हारी ममता (अपनापन) नहीं है। वास्तवमें अपनी ममता ही दु:ख देती है।

भागवतमें कथा आती है कि जब राजा चित्रकेतुका इकलौता पुत्र मर गया, तब उन्हें बड़ा शोक हुआ। उनका शोक दूर करनेके लिये महर्षि अंगिरा और देवर्षि नारदजी आये और उन्हें उपदेश दिया। फिर भी चित्रकेतुका शोक नहीं मिटा। तब नारदजीने अपनी योगशक्तिसे उनके पुत्रकी जीवात्माको बुलाया और उससे कहा कि देखो, तुम्हारे पिताजी कितने दु:खी हो रहे हैं और तुम इन्हें छोड़कर चले गये! पुत्र बोला—कौन किसका पुत्र है और कौन किसका पिता? मैंने अबतक न जाने कितनी योनियोंमें जन्म लिया है, और उन सब योनियोंमें मेरे माता-पिता हुए हैं। मैं उनमेंसे किस-किसको अपने माता-पिता मानूँ? ये तो केवल मुझमें ममताके कारण दु:खी हो रहे हैं! (श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ६, अध्याय १५-१६)

संसारके सभी सम्बन्ध ऋणानुबन्धसे अर्थात् कर्जा उतारने अथवा कर्जा वसूलनेके लिये हैं। पुत्र आता है तो वह भी पूर्वजन्मके सम्बन्धसे, लेनेके लिये अथवा देनेके लिये आता है। पुत्रके साथ जो लेन-देनका सम्बन्ध था, वह पूरा होते ही वह चला गया। इसमें शोक कैसा? परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज एक सच्ची घटना सुनाया करते थे—

'एक मारवाड़ी सज्जन था। वह पैसोंके लिये बम्बई गया, पर बहुत जल्दी वापिस आ गया और सब कर्जा चुका दिया। लोगोंके मनमें आश्चर्य हुआ कि यह इतनी जल्दी कैसे पैसे कमाकर ले आया! उसका एक लड़का हुआ। वह बड़ा हुआ तो उसका विवाह कर दिया। विवाह करनेके बाद वह बीमार हो गया। एक रात वह बहुत ज्यादा बीमार हो गया। उसके पास कई लोग बैठे थे कि न जाने कब प्राण चले जायँ! लड़केकी स्थिति ज्यादा खराब देखकर उसका पिता रोने लग गया। जवान लड़का हो और विवाह हो चुका हो तो उसके मरनेका दु:ख ज्यादा होता है। पिताको रोते देख वह लड़का बोला कि 'अब रोनेसे क्या होगा? अमुक दिन तुम यहाँसे गये थे। तुम्हें रास्तेमें एक बंगाली मिला। उसके पास लगभग दस हजार रुपये थे। बीचके एक स्टेशनमें ठहरना पड़ा तो उसके साथ रातमें तुम एक भड़भुँजारीके घरमें ठहरे। रातमें तुम और भड़भुँजारी—दोनोंने मिलकर उस बंगालीको मार दिया और उसके सब रुपये ले लिये।' लड़केकी बातें सुनकर वहाँ बैठे लोग आपसमें एक-दूसरेको देखने लगे कि बात तो यह ठीक दीखती है; क्योंकि सबके मनमें पहलेसे

ही यह शंका थी कि यह इतनी जल्दी रुपये कहाँसे लाया? फिर वह लड़का बोला कि 'मैं वही बंगाली हूँ और बदला लेनेके लिये ही इसके घरमें जन्मा हूँ। अभी भी कुछ कर्जा बाकी है, उसको लेने मैं एक बार फिर आऊँगा। ब्याजसहित सब कर्जा लूँगा।' वहाँ बैठे किसी आदमीने कहा कि 'यह बेचारी बनियेकी बेटी विधवा हो जायगी, इसका क्या कसूर?' यह सुनते ही वह लड़का तेजीसे बोला कि 'वही यह राँड़ भड़भुँजारी है! इन दोनोंने मिलकर मेरेको मारा था! अब यह जन्मभर दु:ख पायेगी'।

लड़केकी बातें सुनकर उसका पिता बोला कि 'यह सन्निपातमें, बेहोशीमें बोलता है।' उसका लड़का तेजीसे बोला कि 'मैं सन्निपातमें नहीं बोलता हूँ। सच्ची बातें कहता हूँ। अभी बागलोंके घरमें दीवार फोड़कर चार चोर चोरी कर रहे हैं। जाकर देख लो। अगर यह बात सच्ची है तो मेरी बात भी सच्ची है।' उस समय तो वहाँ कोई गया नहीं, पर सुबह लोगोंने देखा तो चोरीकी बात सच्ची निकली।'

अन्य श्रोता—महाराज! सम्पत्तिको लेकर मेरा भाइयोंसे झगड़ा चल रहा है। भाईलोग उस सम्पत्तिपर भी कब्जा करना चाहते हैं, जिसपर मेरा हक बनता है। आप बतायें कि मुझे क्या करना चाहिये?

सन्त—तुम्हारे भाई तो उस सम्पत्तिको लेकर अन्धे हो रहे हैं, जो उनके पास भी सदा नहीं रहेगी, एक दिन बिछुड़ जायगी। पर तुम तो अपनी आँखें खुली रखो! प्रेम जितना मूल्यवान् है, उतनी सम्पत्ति मूल्यवान् नहीं है। प्रेमके लिये यदि कुछ नुकसान भी उठाना पड़े तो कोई घाटा नहीं है। अगर वे अन्यायपूर्वक अधिक सम्पत्तिपर कब्जा करते हैं तो भी तुम्हें चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं। जो तुम्हारे भाग्यमें है, वह तुम्हें मिलेगा ही। उसे तुमसे कोई छीन सकता ही नहीं।

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्या
दैवोऽपि तं लङ्घयितुं न शक्तः।
तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे
यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्॥

(पञ्चतन्त्र २। ११३; गरुड़पुराण आचार० ११३। ३२)

'प्राप्त होनेवाली वस्तु मनुष्यको मिलती ही है, विधाता भी उसको रोकनेमें समर्थ नहीं है। इसलिये न तो (वस्तु न मिलनेपर) मैं शोक करता हूँ और न (वस्तु मिलनेपर) मुझे आश्चर्य ही होता है; क्योंकि जो वस्तु मेरी है, उसे दूसरा कोई नहीं ले सकता।'

सम्पत्तिका बँटवारा तो हो सकता है, पर भाग्यका बँटवारा नहीं हो सकता। परिणाममें दूसरेका हक मारनेवाला व्यक्ति दु:ख ही पाता है। हो सकता है कि भाइयोंसे अलग होनेपर तुम्हें भविष्यमें इससे भी अधिक लाभ हो जाय!

कुछ देर शान्त रहनेके बाद सन्त बोले—

अब आप सभी भाई-बहन ध्यानसे सुनें। हमें यह मनुष्यशरीर पूर्वजन्मोंमें किये कर्मोंका फल भोगकर अपना कल्याण करनेके लिये मिला है। अत: जबतक शरीर है, तबतक अनुकूल-प्रतिकूल, सुखदायी-दु:खदायी परिस्थितियाँ आती ही रहेंगी, रोग आते ही रहेंगे। इनसे कोई बच सकता ही नहीं। इतिहासको देखें तो आजतक ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं हुआ, जिसके जीवनमें केवल सुखदायी अथवा केवल दु:खदायी परिस्थिति ही आयी हो। सुखदायी और दु:खदायी—दोनों परिस्थितियाँ सबके

जीवनमें आती हैं। परन्तु उनमें सुखी-दुःखी होना या न होना हमारे हाथकी बात है। इसलिये कहा है—

देह धरे का दंड है, सब काहू को होय।
ग्यानी भुगते ग्यान ते, मूरख भुगते रोय॥

ज्ञानीलोग उसी प्रतिकूल परिस्थितिको हँसकर सहते हैं, मूर्खलोग रोकर सहते हैं। आपलोग भी यदि चाहें तो इन दो बातोंपर विचार करके अपनी मूर्खता, अपना दुःख मिटा सकते हैं—

१—जो भी प्रतिकूल परिस्थिति आयी है, वह सदा नहीं रहेगी।

२—प्रतिकूल परिस्थिति हमारे पापोंका फल है, इसलिये उसे भोग लेनेसे हमारे पाप कट जायँगे, हम शुद्ध हो जायँगे, सुखी हो जायँगे।

पहली बातपर विचार करें तो इस संसारमें कोई भी परिस्थिति सदा रहनेवाली नहीं है। दिनके बाद रात और रातके बाद दिन आता ही है—

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥

(वाल्मीकि० २। १०५। १६; महाभारत, आश्व० ४४। १९ आदि)

'समस्त संग्रहोंका अन्त विनाश है, लौकिक उन्नतियोंका अन्त पतन है, संयोगोंका अन्त वियोग है और जीवनका अन्त मरण है।'

इसलिये जो परिस्थिति आये, उसका सदुपयोग करें। सदुपयोग कैसे करें? अनुकूल परिस्थिति आनेपर दूसरोंकी सेवा करें और प्रतिकूल परिस्थिति आनेपर सुखकी इच्छाका त्याग करें। जो दूसरोंको सुख पहुँचाता है और जो सुखकी इच्छाका त्याग कर देता है, वह कभी दुःखी नहीं होता।

दूसरी बातपर विचार करें तो प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थिति हमारे पूर्वकृत पापोंका फल है। अपने पापोंका फल तो हमें भोगना ही पड़ेगा, चाहे वर्तमानमें भोगें या भविष्यमें—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मकोटिशतैरपि॥

(नारदपुराण, पूर्व० ३१। ६९-७०; ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ८५। ३६)

'अपने किये हुए अच्छे और बुरे कर्मोंका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। कोई भी कर्म सौ करोड़ कल्पोंमें भी बिना भोगे नष्ट नहीं होता।'

यदि अपने पापोंका फल हम अभी नहीं भोगेंगे तो भविष्यमें ब्याजसहित उनका फल भोगना पड़ेगा! योगिराज श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी एक दिन अपने सेवक कृष्णारामके साथ कहीं जा रहे थे। अचानक योगिराजने अपने सेवकसे कहा—'कृष्णाराम! कपड़ा फाड़ो'। सेवक उनकी बातको ठीक समझ नहीं पाया। कुछ ही देरमें पासके मकानकी छतसे एक ईंट आकर योगिराजके पैरपर गिरी। पैरकी अँगुलीसे खून बहने लगा। सेवकने तुरन्त कपड़ा फाड़कर अँगुलीमें बाँध दिया। फिर सेवकने पूछा कि 'महाराज! यदि आपको पहले ही पता था कि पैरपर ईंट गिरेगी तो फिर आप दूर हट क्यों नहीं गये?' योगिराजने मुस्कराते हुए उत्तर दिया कि 'कृष्णाराम! यदि मैं दूर हट जाता तो प्रारब्धका यह भोग मुझे आगे चलकर ब्याजसहित चुकाना पड़ता! ऋण जितनी जल्दी चुक जाय, उतना ही अच्छा है!'

'मानव-सेवा-संघ' के प्रवर्तक पूज्यपाद स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज कहते थे—*'सुखके जानेसे किसीका अमंगल नहीं होता और दु:खके आनेसे किसीका अहित नहीं होता।'* इसलिये भगवान्‌के भक्त सांसारिक प्रतिकूलताको विपत्ति न मानकर भगवान्‌के विस्मरणको ही विपत्ति मानते हैं—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

(मानस, सुन्दर० ३२। २)

आइये, सब मिलकर सूरदासजीका यह पद गायें—

भावी काहू सौं न टरै।
कहँ वह राहु, कहाँ वै रबि-ससि, आनि सँजोग परै॥
मुनि बसिष्ट पंडित अति ग्यानी, रचि-पचि लगन धरै।
तात-मरन, सिय-हरन, राम बन बपु धरि बिपति भरै॥
रावन जीति कोटि तैंतीसा, त्रिभुवन-राज करै।
मृत्युहि बाँधि कूप मैं राखै, भावी बस सो मरै॥
अरजुन के हरि हुते सारथी, सोऊ बन निकरै।
द्रुपद-सुता कौ राजसभा, दुस्सासन चीर हरै॥
हरीचंद-सौ को जग दाता, सो घर नीच भरै।
जौ गृह छाँड़ि देस बहु धावै, तउ वह संग फिरै॥
भावी कैं बस तीन लोक हैं, सुर नर देह धरै।
सूरदास प्रभु रची सु ह्वैहै, को करि सोच मरै॥

'होनहार किसीसे भी टलती नहीं। कहाँ वह राहु और कहाँ वे सूर्य-चन्द्र, बहुत दूरी है उनमें, पर उनका भी (ग्रहणके समय) संयोग हो जाता है! वसिष्ठ मुनि बड़े विद्वान् तथा ज्ञानी थे और उन्होंने बड़े परिश्रमसे राज्याभिषेकका मुहूर्त निकाला; किन्तु परिणाम यह हुआ कि दशरथजीका मरण हो गया, सीताजीका हरण हो गया और रामको वनवासी वेष धारण करके वनमें कष्ट झेलने पड़े! रावणने तैंतीस कोटि देवताओंको जीत लिया था और त्रिलोकीपर राज्य कर रहा था। उसने मृत्युको भी बाँधकर कुएँमें डाल रखा था; किन्तु होनहारवश वह भी मारा गया! अर्जुनके तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण सारथि थे, पर उन्हें भी वनवास भोगना पड़ा! द्रौपदी श्रीकृष्णकी परम भक्ता थीं, पर राजसभामें दु:शासनने उनका वस्त्र खींचा! संसारमें राजा हरिश्चन्द्रके समान कौन दानी होगा, पर उन्हें भी नीच चाण्डालके घर नौकरी करनी पड़ी!'

'यदि कोई अपना घर छोड़कर दूसरे अनेक देशोंमें घूमता फिरे, तो भी प्रारब्ध उसके साथ ही घूमता है, उसका पीछा नहीं छोड़ता। तीनों लोकोंमें देवता, मनुष्य और जितने भी देहधारी हैं, सभी होनहारके वशमें हैं। अत: सूरदासजी कहते हैं कि प्रभुने जो विधान कर रखा है, वही होगा, फिर चिन्ता करके क्यों मरें?'

सन्त-वाणी

(परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

१. जो होनेवाला है, वह तो होकर ही रहेगा और जो नहीं होनेवाला है, वह कभी नहीं होगा, चाहे उसकी कामना करें या न करें। जैसे कामना न करनेपर भी प्रतिकूल परिस्थिति आ जाती है, ऐसे ही कामना न करनेपर अनुकूल परिस्थिति भी आयेगी ही।

२. यदि वस्तुओंकी इच्छा न रहे तो जीवन आनन्दमय हो जाता है और यदि जीनेकी इच्छा न रहे तो मृत्यु भी आनन्दमयी हो जाती है। जीवन तभी कष्टमय होता है, जब वस्तुओंकी इच्छा करते हैं, और मृत्यु तभी कष्टमयी होती है, जब जीनेकी इच्छा करते हैं।

३. मनुष्य प्रतिकूल घटनाको चाहता नहीं, करता नहीं और उसमें उसका अनुमोदन भी नहीं रहता, फिर भी ऐसी घटना घटती है, तो उस घटनाको उपस्थित करनेमें कोई भी निमित्त क्यों न बने और वह भी भले ही किसीको निमित्त मान ले, पर वास्तवमें उस घटनाको घटानेमें भगवान्‌का ही हाथ है, भगवान्‌की ही मरजी है।

४. यह सर्वज्ञ, सर्वसुहृद्, सर्वसमर्थ भगवान्‌का विधान है कि पापसे अधिक दण्ड कोई नहीं भोगता और जो दण्ड मिलता है, वह किसी-न-किसी पापका ही फल होता है।

५. पापोंसे पुण्य नहीं कटते और पुण्योंसे पाप नहीं कटते। हाँ, अगर मनुष्य पाप काटनेके उद्देश्यसे (प्रायश्चित्त-रूपसे) शुभकर्म करता है, तो उसके पाप कट सकते हैं।

६. अभी पुण्यात्मा जो दुःख पा रहा है, यह पूर्वके किसी जन्ममें किये हुए पापका फल है, अभी किये हुए पुण्यका नहीं। ऐसे ही अभी पापात्मा जो सुख भोग रहा है, यह भी पूर्वके किसी जन्ममें किये हुए पुण्यका फल है, अभी किये हुए पापका नहीं।

७. सृष्टिकी प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति आदि प्रतिक्षण नाशकी ओर जा रहे हैं। हम जिस वस्तु, व्यक्ति आदिमें सुन्दरता, बलवत्ता आदि विशेषता देखते हैं, वे एक दिन नष्ट हो जाते हैं। अतः सृष्टिकी प्रत्येक वस्तु मानो यह क्रियात्मक उपदेश दे रही है कि मेरी तरफ मत देखो, मैं तो रहूँगी नहीं, मेरेको बनानेवालेकी तरफ देखो। मेरेमें जो सुन्दरता, सामर्थ्य, विलक्षणता आदि दीख रही है, यह मेरी नहीं है, प्रत्युत उसकी है!

८. जो चाहते हैं, वह न हो और जो नहीं चाहते, वह हो जाय—इसीको दुःख कहते हैं। यदि 'चाहते' और 'नहीं चाहते' को छोड़ दें, तो फिर दुःख है ही कहाँ!

९. दुःखको मिटानेके लिये सुखकी इच्छा करना दुःखकी जड़ है।

१०. यह सिद्धान्त है कि जो खुद दुःखी होता है, वही दूसरोंको दुःख देता है।

११. दूसरोंको दुःख देनेपर उनका (जिनको दुःख दिया गया है) तो वही नुकसान होता है, जो प्रारब्धसे होनेवाला है; परन्तु जो दुःख देते हैं, वे नया पाप करते हैं, जिसका फल नरक उन्हें भोगना

ही पड़ता है।

१२. कर्म बाहरसे किये जाते हैं, इसलिये उन कर्मोंका फल भी बाहरकी परिस्थितिके रूपमें ही प्राप्त होता है। परन्तु उन परिस्थितियोंसे जो सुख-दुःख होते हैं, वे भीतर होते हैं। इसलिये उन परिस्थितियोंमें सुखी तथा दुःखी होना शुभाशुभ कर्मोंका अर्थात् प्रारब्धका फल नहीं है, प्रत्युत अपनी मूर्खताका फल है।

१३. हम यहाँके, जन्म-मृत्युवाले संसारके नहीं हैं। यह हमारा देश नहीं है। हम इस देशके नहीं हैं। यहाँकी वस्तुएँ हमारी नहीं हैं। हम इन वस्तुओंके नहीं हैं। हमारे ये कुटुम्बी नहीं हैं। हम इन कुटुम्बियोंके नहीं हैं। हम तो केवल भगवान्‌के हैं और भगवान् ही हमारे हैं।

—'साधक-संजीवनी' से संकलित

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी वाणीपर आधारित

'गीता प्रकाशन' का शीघ्र कल्याणकारी साहित्य

१. **संजीवनी-सुधा**—'गीता साधक-संजीवनी' पर आधारित शोधपूर्ण पुस्तक।
२. **सीमाके भीतर असीम प्रकाश**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
३. **बिन्दुमें सिन्धु**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
४. **नये रास्ते, नयी दिशाएँ**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
५. **अनन्तकी ओर**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
६. **स्वातिकी बूँदें**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
७. **अनुभव-वाणी**—चुने हुए अनमोल वचन। अँग्रेजी-भाषान्तरसहित।
८. **सहज गीता** (अँग्रेजीमें भी)—नये पाठकोंके लिये 'साधक-संजीवनी' के अनुसार गीताका सरल हिन्दीमें भावार्थ।
९. **हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं** (गुजराती व अँग्रेजीमें भी)—इस प्रार्थनाके रहस्य तथा महत्त्वका अद्‌भुत वर्णन।
१०. **कृपामयी भगवद्‌गीता** (गुजरातीमें भी)—गीताकी महिमा और उसकी विलक्षणताका वर्णन।
११. **लक्ष्य अब दूर नहीं** (गुजरातीमें भी)—परमात्मप्राप्तिके विविध सुगम साधनोंका अनूठा संकलन।
१२. **सहज समाधि भली** (गुजरातीमें भी)—'चुप साधन' का विस्तृत विवेचन।
१३. **अपने प्रभुको पहचानें**—भगवान्‌के समग्ररूपका विस्तृत विवेचन।
१४. **एक सन्तकी अमूल्य शिक्षा** (क्या करें, क्या न करें)
१५. **विलक्षण सन्त, विलक्षण वाणी**—प० श्रीस्वामीजी महाराजकी वसीयत-सहित।
१६. **गोरक्षा—हमारा परम कर्तव्य**
१७. **क्या करें, क्या न करें ?**—आचार-व्यवहार संबंधी शास्त्र-वचनोंका अनूठा संग्रह।
१८. **भवन-भास्कर** (परिशिष्ट-सहित)—वास्तुशास्त्रकी महत्त्वपूर्ण बातें।
१९. **सुखपूर्वक जीनेकी कला**—सर्वोपयोगी प्रश्नोत्तर।
२०. **क्या आप ईश्वरको मानते हैं ?**—साधकोंके लिये चेतावनी।
२१. **बोलनेवाली श्रीमद्भगवद्गीता** (अर्थसहित)—इसे पढ़नेके साथ-साथ शुद्ध उच्चारणमें सुन भी सकते हैं।
२२. **ग्लोब गीता**—आकर्षक ग्लोबके आकारमें सम्पूर्ण गीता।

गीता प्रकाशन,
कार्यालय—माया बाजार, पश्चिमी फाटक,
गोरखपुर—273001 (उ०प्र०)
फोन—09389593845; 07668312429
e-mail: radhagovind10@gmail.com
Website: gitaprakashan.com